नलिनी शुक्ला
'व्यथिता'

# प्रकीर्णम्

●

उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत

# प्रकीर्णम्

नलिनी शुक्ला 'व्यथिता'

प्रकाशक
शक्ति योगाश्रम
नानाराव घाट
छावनी, कानपुर

लेखिका
डा० (श्रीमती) नलिनी शुक्ला
११०/५१, रामकृष्ण नगर
कानपुर-१२

(सर्वाधिकार लेखिकाधीन)

प्रथम संस्करण
अक्षय तृतीया
१९७६ ई०
मूल्य ५ रु०

मुद्रक—
अमलतास प्रेस
परेड, कानपुर

# प्राक्कथनम्

कवयित्री डा० नलिनी शुक्ला 'व्यथिता' लोकवैषम्येणागतां स्वव्यथां प्रकीर्णपद्येषु निबद्ध्य हृदयावर्जनकारिणीम् कृतिं सुरभारतीविदुषां मनोरञ्जनाय स्वान्तःसुखाय च विदधौ। प्रायशः मनःसरसि विविधाः विचारतरङ्गावलयः, उत्थाय सर्वं पीड़यन्ति। आदिकवेः हृदयम् एतादृश्येव पीड़यैव व्यथितम् यदा ऽभूत् तदैव रामायणनामकाव्यं प्रादुर्भूतम्। व्यथितायाः, व्यथितहृदयम् एतेषु प्रकीर्णयद्येषु प्रकटीभूय कम्-कम्, काम्-काम् च न विचालयिष्यति ? हृदयस्यैषा दशा महदुपकारिणी भवति। काव्यस्य एतल्लक्ष्यं मनोरमम् हितावहम् च भवति। व्यथितायाः काव्यप्रतिभाकौमुदी नित्यं नवनवोन्मेषम् अवाप्य धवलयशं प्राप्नोतु। एतैः शुभाशीर्वचनैः प्रकीर्णम् काव्यम् सज्जनकरकमलेषु समर्पयामि।

डा० मुन्शीरामः शर्मा 'सोम'
भागवतम्

श्री गणेशायनमः ।

श्री सरस्वत्यै नमः ।

# प्रकीर्णम्

भगवत्याः प्रसादेन दुर्लभं किं भवेद्भवे ?
रत्नाकरः समुद्रो ऽ स्ति तत्रान्वेष्टैव दुर्लभः ॥ १ ॥

भाषानुवाद—देवी के प्रसाद से संसार में दुर्लभ क्या है ? समुद्र तो रत्नों का आकर है (ही) किन्तु उनका खोजने वाला ही दुर्लभ है ॥ १ ॥

स्वात्मीयबलदर्पेण महांसो ऽ पि पतन्ति हि ।
अतस्त्यक्त्वा सदा गर्वं कर्त्तव्यं स्वीयमाचरेत् ॥ २॥

भाषानुवाद—अपने बल के दर्प से महापुरुष भी पतित हो जाते हैं । अतः गर्व को छोड़ कर सदैव अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये ॥ २ ॥

स्वेष्टयोगवियुक्तस्य रोदनं हि परं बलम् ।
शोकक्षुब्धं तु हृदयं प्रलापेनैव धार्यते ॥३ ॥

भाषानुवाद—अपने इष्ट से वियुक्त होने पर रोदन ही सबसे बड़ा बल होता है शोक से व्याकुल हृदय प्रलाप से अर्थात् रोने से ही धारण किया जाता है ॥ ३ ॥

अनिर्वेदो भवेन्मूलमुन्नत्या वैभवस्य च ।
भाग्यवादिमनुष्याणां क्वोन्नतिः क्व भवेत्सुखम् ॥ ४ ॥

भाषानुवाद--हिम्मत न हारना (अखिन्नता) ही उन्नति और वैभव का मूल है । भाग्यवादी मनुष्य की कहाँ उन्नति और कहाँ सुख ? ॥ ४ ॥

वक्रमार्गविचित्रस्य जगतः प्रीणनं कथम् ?
सुदुर्लभाः गिरो लोके लोके सर्वमनोरमाः ॥ ५ ॥

भाषानुवाद--कुटिलमार्गगामी जगत् को कैसे प्रसन्न किया जा सकता है । संसार में सब को प्रसन्न करने वाली वाणी अत्यन्त दुर्लभ दिखाई देती हैं ॥ ५ ॥

उपकार सहस्राणि नालं दुष्टायतोषणे ।
पयसा पोष्यमाणो ऽ हिः पोष्टारं ग्रसते खलः ॥ ६ ॥

भाषानुवाद—दुष्ट को सन्तुष्ट करने के लिए हजारों उपकार भी पर्याप्त नहीं है । दुग्ध से पुष्ट किया हुआ दुष्ट सर्प पोषण करने वाले को ही डस (ग्रस) लेता है ॥ ६ ॥

सदादरप्रयत्नेन विदुषां – सङ्गमाचरेत् ।
जड़ाः प्रावीण्यमायान्ति सङ्गत्यैव मनीषिणः ॥ ७ ॥

भाषानुवाद—सदा आदर और प्रयत्न से विद्वानों का साथ करना चाहिए । जड़ मनुष्य भी मनीषियों अर्थात् विद्वानों की सङ्गति से प्रवीणता को प्राप्त हो जाता है ॥ ७ ॥

यशोमानधनेच्छुर्हि लोकः सर्वोऽवलोक्यते ।
कीर्तीच्छा गुरुदौर्बल्यं धनमाने सुराविषे ॥ ८ ॥

भाषानुवाद—सभी लोग यश, मान और धन के इच्छुक दिखाई पड़ते हैं। यशः प्राप्ति की इच्छा मनुष्य की महती दुर्बलता है तथा धन एवं मान क्रमशः शराब एवं विष के समान हैं ॥ ८ ॥

भर्त्स्यमाणोऽपि भाग्येन नरो भग्नमनोरथः ।
पिशाचिन्याशयाग्रस्तः साफल्यायैव चेष्टते ॥ ९ ॥

भाषानुवाद—भाग्य के द्वारा भर्त्सना किया हुआ मनुष्य भग्नमनोरथ होकर भी आशा रूपी पिशाचिनी से ग्रसित होकर सफलता के लिये ही चेष्टा करता हैं ॥ ९ ॥

शारीरं तु सुखं लोके धनधान्यैरवाप्यते ।
वर्धते मानसी चिन्ता शान्तिशत्रुस्वरूपिणी ॥ १० ॥

भाषानुवाद—संसार में शारीरिक सुख धन-धान्य से प्राप्त होता है। शान्ति की शत्रु स्वरूपा मन की चिन्ता बढ़ने लगती है ॥ १० ॥

धनार्जनेन वर्धत संचयस्यैव कामना ।
यथेन्द्रियसुखप्राप्त्या भोगेच्छैव प्रदीप्यते ॥ ११ ॥

भाषानुवाद—धन के अर्जन से संचय की ही कामना बढ़ती है। जैसे इन्द्रियों के सुखों की प्राप्ति से भोगों की इच्छा ही प्रदीप्त होती है ॥ ११ ॥

जननी

जनन्याश्शक्तिमादाय नरः प्रारभ्य जीवनम् ।
तस्या एव हि तारुण्ये कुरुते नित्य भर्त्सनां ॥ १२ ॥

भाषानुवाद—जननी (माता) की शक्ति को प्राप्त करके मनुष्य जीवन को प्रारम्भ करता है । किन्तु (खेद है कि) युवा-वस्था में वह उसी की नित्य भर्त्सना करता है ॥ १२ ॥

यस्यास्नेहमयं रक्तं नाडिकासु नृणां वहत् ।
बलं दधाति सा नारी ह्यबला कथ्यते कथम् ॥ १३ ॥

भाषानुवाद—जिसका स्नेहमय रक्त मनुष्य की नाड़ियों में बहता हुआ बल देता है, वह नारी अबला क्यों कही जाती है ?

नारी शक्ति

शिवश्शवत्वं प्राप्नोति शैवीं शक्तिं विना यदा ।
बलचर्चा मुधा नृणां नार्याश्शक्तिं विनेह तु ॥ १४ ॥

भाषानुवाद—जब बिना पार्वती की शक्ति के बिना शिव शवत्व को प्राप्त हो जाता है । तब, इस लोक में नारी की शक्ति के बिना मनुष्यों के बल की चर्चा ही व्यर्थ है ।

स्वतन्त्रता

मन्ये स्वतन्त्रताप्राप्ता धूर्तैरेव हि केवलम् ।
तेषामेवभृताः कोषाः सज्जनाः क्षीणतां गताः ॥ १५ ॥

भाषानुवाद—मैं समझती हूं कि केवल धूर्तों को ही स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है । उन्हीं के ही खजाने भरे गये हैं । सज्जन तो क्षीणता को ही प्राप्त हुये हैं ।

पतिः कामयते पत्नीं साध्वीं मधुरभाषिणीम् ।
औद्धत्यं च स्वयं याति कटुतां च क्षणे-क्षणे ॥ १६ ॥

भाषानुवाद—पुरुष सती और मधुर-वचन बोलने वाली पत्नी की इच्छा करता है किन्तु स्वयं प्रत्येक क्षण औद्धत्य और कटुत्व का व्यवहार करता है ॥ १६ ॥

त्यक्त्वा स्वेष्टजनान् पत्युर्गेहं कन्या प्रयात्यहो ।
तत्र सा भर्त्स्यते नित्यं तस्यास्त्यागो न गण्यते ॥ १७ ॥

भाषानुवाद—अहो ! अपने इष्ट जनों को छोड़कर कन्या पति-गृह को जाती है । वहां उसकी प्रतिदिन भर्त्सना होती है । उसके त्याग की गणना नहीं की जाती ॥ १७ ॥

विलासायैव भर्तापि भार्यां स्नेहेन पश्यति ।
पीडाकाले ह्यसौ तस्याः कुरुते भूरि भर्त्सनाम् ॥ १८ ॥

भाषानुवाद—भोग विलास के कारण ही पति भी पत्नी को स्नेह से देखता है । कष्ट के समय वह, उसकी अत्यधिक भर्त्सना करता है ॥ १८ ॥

सुखसीधुनिमग्ना ये येषां पीडाश्च निद्रिताः ।
क्वावकाशो भवेत्तेषां दुःखश्रवणहेतवे ॥ १९ ॥

भाषानुवाद—सुख की मदिरा में जो निमग्न हैं और जिनकी पीडा सोई हुई है, उनको किसी का दुःख सुनने को अवकाश कहाँ ॥ १९ ॥

सुखे भोगे ऽवतिष्ठन्ते सर्वे सौहार्दभावतः ।
कार्यकाले विपत्तौ च लभ्यते यस्स दुर्लभः ॥ २० ॥

भाषानुवाद—सुख भोग में सभी मित्र उपस्थित रहते हैं। समय पड़ने पर और विपत्ति में जो प्राप्त होता है; वह मित्र दुर्लभ है ॥ २० ॥

न जाने ते कथंभूताः महात्मानः तपेन ये ।
इष्टप्रसादलाभेन लभन्ते फलमीहितम् ॥ २१ ॥

भाषानुवाद—न जाने वे महापुरुष कैसे हैं, जो तप और इष्ट प्रसादलाभ से इच्छित फल प्राप्त करते हैं ॥ २१ ॥

वर्तते को हि संसारे यो न दुःखेन लक्षितः ।
उपेक्षन्ते तथाप्यापद्गतं सर्वे ह्यहो नराः ॥ २२ ॥

भाषानुवाद—ऐसा कौन पुरुष संसार में है जिसको दुख ने लक्ष्य नहीं बनाया है। आश्चर्य है कि फिर भी सभी मनुष्य आपत्ति में पड़े हुओं की उपेक्षा करते हैं ॥ २२ ॥

साधुवेशे चरन्त्येते वञ्चका एव भूरिशः ।
अन्यथा संगतिः साध्वी मंगलं किम् न दास्यति ॥ २३ ॥

भाषानुवाद—ये बहुतेरे ढोंगी ही साधु वेश में घूम रहे हैं। अन्यथा अच्छी संगति भला मंगल क्यों नहीं देगी ॥ २३ ॥

दृश्यते यज्ञयागास्तु क्रियन्ते हि दिने-दिने ।
अपर्जन्यं च दुर्भिक्षं तथैवायान्ति नित्यशः ।। २४ ।।

भाषानुवाद—प्रतिदिन यज्ञ-याग किये जाते हुए दिखाई देते हैं, तथापि बादलों का न आना और अकाल उसी प्रकार से नित्य आते हैं ।। २४ ।।

अतो मन्ये वृथायज्ञाः वञ्चका वाथ याज्ञिकाः ।
अन्यथा भूरि दुर्भिक्षाण्यद्य देशे भवन्ति किम् ।। २५ ।।

भाषानुवाद—अतः मैं मानती हूँ कि यातो यज्ञ व्यर्थ हैं अथवा यज्ञ करने वाले ही ठग हैं । नहीं तो आजकल देश में भयंकर अकाल क्यों पड़ते हैं ।।२५।।

सत्यं विजयते नित्यं श्रूयते दृश्यते ऽन्यथा ।
क्षीयते सत्यवाङ्नित्यं प्रतिष्ठां यात्यसत्यवाक् ।। २६ ।।

भाषानुवाद—सत्य की विजय होती है, यह नित्य सुनाई पड़ता है किन्तु दिखलाई इसके विपरीत पड़ता है । सत्यवाणी प्रतिदिन क्षीण होती जाती है और असत्य वाणी फूल-फूल रही है ।।२६।।

श्रीसेवा याति साफल्यं वैफल्यं श्रीपतेः श्रयः ।
वर्धते हि कलौ तस्मात् तस्यास्तद्भक्तमण्डलम् ।। २७ ।।

भाषानुवाद—लक्ष्मी की सेवा से सफलता प्राप्त होती है । श्री पति के प्रति श्रम करने से विफलता ही प्राप्त होती है । इसी लिये कलियुग में लक्ष्मी का भक्त मण्डल बढ़ रहा है ।।२७।।

भाग्यनिर्माणदम्भेन प्रयत्नं कुरुते नरः ।
प्राप्ते ऽ पि तस्य वैफल्ये नोन्मत्त इव शाम्यति ॥ २८ ॥

भाषानुवाद—भाग्य-निर्माण के दम्भ से मनुष्य प्रयत्न करता है। उसमें विफलता के प्राप्त हो जाने पर भी (वह) उन्मत्त की तरह शान्त नहीं होता है ॥२८॥

जनन्याः कुक्षितो बालः दुश्चरित्रो न जायते ।
सन्त्योत्तरप्रदातारः पितरौ सङ्गतिस्तथा ॥२९॥

भाषानुवाद—माता के गर्भ से बालक दुश्चरित्र नहीं उत्पन्न होता हैं। उसकी दुश्चरित्रता के माता पिता और सङ्गति उत्तरदायी हैं ॥२९॥

न हि बालस्ततो दोषी दौर्गुण्ये स्वस्य केवलम् ।
अविचारिपथास्तस्य पोषका अपि दोषिणः ॥३०॥

भाषानुवाद—अतः अपने दुर्गुणों के लिये केवल बालक दोषी नहीं है। अविचारपूर्ण मार्ग पर चलने वाले उनके संरक्षक भी दोषी हैं ॥३०॥

कीदृशीजगतो रीतिश्चित्रेयं परिदृश्यते ।
दण्ड्यते न्यायसत्कामी विपरीतो हि पूज्यते ॥३१॥

भाषानुवाद—संसार की यह रीति कैसी विचित्र दिखलाई देती है। न्याय और सत्य की कामना करने वाले तो दण्डित होते हैं, और इसके विपरीत आचरण करने वाले पूजे जाते हैं।

भ्रियन्ते ऽन्यायिनः कोषाः सतां क्षीणत्वमागताः ।
विधे हन्त ! विचित्रेयं कीदृश्यस्ति विम्बना ॥३२॥

भाषानुवाद—अन्यायियों के कोष तो भरते हैं। और सज्जनों के कोष क्षीणता को प्राप्त होते है। हा विधाता ! यह कैसी विचित्र बिडम्बना है ॥३२॥

वृथा वार्ता विचार्येत सदाचारस्य तत्कलौ ।
कञ्चुकावृत धर्मस्य यस्मिन्नरभुजंगमाः ॥३३॥

भाषानुवाद—अतः कलियुग में सदाचार की वार्ता व्यर्थ है जिसमें धर्म के चोगे से शरीर को ढके हुये नरभुजंगम रहते हैं ॥३३॥

धर्मस्यार्थमजानन्तः क्रोशन्त्यज्ञविचारकाः ।
अपेक्षाहीनधर्मस्य भारतं ह्यद्य वर्तते ॥३४॥

भाषानुवाद—धर्म के अर्थ को न जानने वाले अज्ञ विचारक लोग चिल्लाते हैं, आजकल भारत धर्मनिरपेक्ष राज्य है ॥३४॥

अहोऽयं ममतापाशः कोमलोऽपि महादृढ़ः ।
वर्तते कोऽनु संसारे यो नानेन निबद्ध्यते ॥३५॥

भाषानुवाद—अहा ! यह मोह रूपी पाश कोमल होने पर भी बड़ा मज़बूत है। ऐसा कौन संसार में है जो इसके द्वारा बांधा न गया हो ॥३५॥

इयं तु जगतः रीतिः प्राचीनाति हि वर्तते ।
वाङ्मधुश्लाघ्यते प्रायो हृन्माधुर्यं विडम्ब्यते ॥३६॥

भाषानुवाद–संसार की यह रीति अति प्राचीन है कि प्रायः वाणी की मधुरता की प्रशंसा की जाती है और हृदय का माधुर्य विडम्बना को प्राप्त होता है ॥३६॥

आदरं प्राप्यते प्रायः मृदुवाग्वक्रमार्गगः ।
हितैषी ऋजुगामी च स्पष्टवक्ता न शस्यते ॥३७॥

भाषानुवाद—प्रायः मधुरभाषी और वक्रगामी संसार में आदर पाते हैं । किन्तु सरल स्वभाव वाले तथा हित चाहने वाले स्पष्ट वक्ता की प्रशंसा नहीं होती ॥ ३७॥

कलहेनैव पूर्णोऽयं संसारः परिदृश्यते ।
पुण्यात्मानः कथंभूताः सुखशान्त्या वसन्ति ये ॥३८॥

भाषानुवाद—यह संसार कलह से ही पूर्ण दिखाई देता है, वे पुण्यात्मा कैसे होते हैं, जो सुख शान्ति से रहते हैं ॥३८॥

स्नेहपूता सुदृष्ट्या ये स्नापिता ते कथं जनाः ।
लोकेऽहं त्विह सर्वत्र घृणमेव* समीक्षणम् ॥३९॥

भाषानुवाद—स्नेह से पवित्र सुदृष्टि से जो नित्य नहाते हैं वे लोग कैसे होते हैं । मुझे तो इस संसार में सर्वत्र घृणामयी दृष्टि ही दृष्टिगोचर होती है ॥३९॥

---

* घृणा अस्ति यस्मिन् तत् घृणम् 'अर्श आदिभ्यो ऽच् इति मतुपर्थकेऽच् प्रत्यये आर्धधातुके परे आकारलोपे घृणमिति सिद्धम् ॥३९॥

स्यादुरः स्नेहपूर्णं किं तत्स्नेहेन क ईक्षते ?
केवलं स्वार्थकाले हि स्नेहनाट्यं प्रदर्श्यते ॥४०॥

भाषानुवाद—स्नेह से पूर्ण हृदय हो तो क्या है ? भला स्नेह से उसे कौन देखता है, केवल स्वार्थसिद्धि के समय स्नेह का अभिनय किया जाता है ॥४०॥

स्वीयप्रेम्णः प्रतीकारं प्रेम्णैव प्राप्नुवन्ति ये ।
अङ्गुलीष्वेव गण्यास्ते विपरीतास्त्वनन्तशः ॥४१॥

भाषानुवाद—जो अपने प्रेम का बदला प्रेम से ही प्राप्त करते हैं वे अँगुलियों पर ही गणना करने योग्य हैं । इसके विपरीत अनन्त हैं ॥४१॥

मन्त्रमुग्धवदाश्चर्यात् जड़विज्ञानपुच्छगाः ।
आर्षविद्यानभिज्ञाः, धिक् ! बहिष्कर्तुं यतन्ति ताम् ॥४२॥

भाषानुवाद—सम्प्रति भौतिकविज्ञान के चमत्कारों से मन्त्रमुग्ध के समान आश्चर्यचकित होकर लोग उसके पीछे दौड़ते हुए, आर्षविज्ञान से अपरिचित होकर उसका बहिष्कार करने में प्रयत्नशील हो रहे हैं ॥४२॥

स्वतन्त्रे भारते तस्याः कीदृश्यस्ति विडम्बना ।
महिम्नाद्यापि यस्यास्ति विश्वमेवातिविस्मितम् ॥४३॥

भाषानुवाद—इस स्वतन्त्र भारत में उस ( आर्षविज्ञान ) की कैसी विडम्बना हो रही है, जिसकी महिमा से आज भी समस्त विश्व चकित हो रहा है ॥४३॥

क्षमागारो भवेन्माता कुपुत्रेऽपीति कथ्यते ।
वध्वागमे कथं सैव प्रायः क्रूरेव दृश्यते ॥४४॥

भाषानुवाद—माता कुपुत्र के प्रति भी क्षमा का भण्डार होती है, ऐसा कहा जाता है । किन्तु बहू के आजाने पर प्रायः वही कैसे क्रूर सी दिखाई देने लगती है ॥४४॥

सुखाशया नरो नित्यं कष्टं प्राप्यापि भूरिशः ।
पौनः पुन्येन यतते तदन्ते चावसीदति ॥४५॥

भाषानुवाद–(भौतिक) सुख की आशा से मनुष्य बहुत कष्टों को प्राप्त करके भी बार २ उन्हीं को पाने का प्रयत्न करता है और अन्त में दुखी होता है ॥४५॥

साध्वाचरणसंसक्ता उपहासास्पदाः कलौ ।
धूर्ताश्च चाटुकाराश्च प्रतिष्ठां यान्ति भूरिश ॥४६॥

भाषानुवाद—साधु आचरण में लगे हुये लोग कलियुग में उपहास के पात्र बनते हैं । धूर्त जन और चाटुकार अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं ॥४६॥

नैराश्यार्णवमग्नायै क्षणं देह्यवलम्बनम् ।
कीर्तिस्तेऽम्बाथ मे नाम कलंकं यास्यतस्तथा ॥४७॥

भाषानुवाद—नैराश्य रूपी समुद्र में निमग्न मुझको क्षण भर के लिये सहारा दो । हे माता ! नहीं तो तुम्हारी कीर्ति और मेरा नाम दोनों कलंकित हो जायेंगे ॥४७॥

अन्यथाम्ब यशःस्ते मे नाम चोभे बुडिष्यतः ।
निर्भय स्तेऽवलम्बी स्यात् प्रसिद्धि परिपालय ॥४८॥

भाषानुवाद—नहीं तो हे माता ! तुम्हारा यश और मेरा नाम दोनों डूब जायेंगे । आपका सहारा लेने वाला निडर होता है, इस प्रसिद्धि का पालन कीजिये ॥४८॥

ओषधीनां चिकित्सानामधुनाऽन्वेषणम् यथा ।
क्रियतेऽन्वेषकैः रोगास्तथैवायान्ति भूरिशः ॥४९॥

भाषानुवाद—जिस प्रकार अन्वेषकों के द्वारा औषधियों और चिकित्सकों की खोज की जा रही है । उसी प्रकार नित्य नये अनेक रोग भी उत्पन्न हो रहे हैं ॥४९॥

आर्षविज्ञानहातारः जड़विज्ञानपुच्छगाः ।
प्रयतन्ते यथा शान्त्यायशान्तिर्वर्धते तथा ॥५०॥

भाषानुवाद—आर्ष विज्ञान को नष्ट करने वाले और जड़विज्ञान (भौतिक विज्ञान) की पूंछ पकड़ने वाले लोग जितना शान्ति के लिये प्रयास करते हैं, उतनी ही अशान्ति बढ़ती है ॥५०॥

मन्यन्ते स्वमतं सर्वे सर्वश्रेष्ठं च सुन्दरम् ।
मूर्खतापूर्णमन्येषां भजन्ते विग्रहं तथा ॥५१॥

भाषानुवाद—सभी लोग अपने मत को सर्वश्रेष्ठ और सुन्दर तथा दूसरों के मत को मूर्खतापूर्ण मानते हैं और इस प्रकार कलह किया करते हैं ॥५१॥

शास्त्रस्यार्थमजानन्तः स्वावहेलनपूर्वकम् ।
उपहासं च कुर्वन्ति स्वेच्छाचारं चरन्ति ते ॥५२॥

भाषानुवाद—शास्त्र के अर्थ को न जानने वाले, शास्त्र की अवहेलना करते हुए उसका उपहास करते हैं एवं यथेच्छ आचरण में प्रवृत्त हो रहे हैं ॥५२॥

कथं लप्स्ये प्रसादं ते नखालोकं च पादयोः ।
कदा स्नेहेन मां मातः कृतार्थं च करिष्यन्ति ॥५३॥

भाषानुवाद—हे माता, मैं आपके चरणों के नखों का प्रकाश और प्रसाद कैसे प्राप्त करूँ। और हे माता ! आप कब मुझे स्नेह से कृतार्थ करोगी ॥५३॥

अहो धिग्जीवनं मे यज्जनन्याः स्नेह वंचितम् ।
जनन्यैव परित्यक्तः स्नेह : क्वान्यत्र लप्स्यते ॥५४॥

भाषानुवाद—अहा ! मेरे जीवन को धिक्कार है, जो माता के स्नेह से वञ्चित है। माता से ही परित्यक्त और कहां स्नेह पायेगा ॥५४॥

चिराच्छोकातिसंतप्ता शोचाम्येतद्दिवानिशं ।
कथं कारुण्यपूर्णा ते भवेद्दृष्टिस्सुधामयी ॥५५॥

भाषानुवाद—चिर काल से शोक से सन्तप्त मैं यह रात-दिन सोचती हूँ कि करुणा से पूर्ण आपकी सुधामयी दृष्टि कब मेरा उद्धार करेगी ॥५५॥

कदा हादन्धिकारेऽस्मिन् स्फुटन्त्यालोकरश्मयः ।
क्षाल्येत च कदामोहो जन्मजन्मान्तरागतः ॥५६॥

भाषानुवाद—इस हृदयान्धाकार में प्रकाश की किरणें कब फूटेंगी तथा जन्म-जन्मान्तर का महान् अज्ञान कब नष्ट होगा ॥५६॥

त्यक्त्वा सङ्गं बहुष्वर्थेष्वैकाग्र्याल्लक्ष्यमाचरेत् ।
वैपरीत्यादितोभ्रष्टस्ततोभ्रष्टश्च सीद्यति ॥५७॥

भाषानुवाद—अनेकों विषयों का सङ्ग छोड़ कर एकाग्रता से अपने लक्ष्य का आचरण करना चाहिये । इसके विपरीत आचरण करने से (ऐसा आचरण करने वाला मनुष्य) न इधर का रहता है न उधर का और खेद प्राप्त करता है ॥५७॥

धनात्स्नेहो धनाद्विद्या धनात्सौजन्यमश्नुते ।
धनं तस्मात् परं ब्रह्म धनमेवार्च्यते जनैः ॥५८॥

भाषानुवाद—(भौतिकताप्रधान युग में) धन से ही स्नेह, विद्या एवं सौजन्य की प्राप्ति होती है अतः (धन को ही सर्वस्व मानने वालों के लिये) धन ही साक्षात् परब्रह्म है और लोगों के द्वारा धन की ही पूजा की जाती है ॥५८॥

शीघ्रं चावसरेणैव कार्यं निश्चित्य साधयेत् ।
गते कालेऽप्रबुद्धात्मा दीर्घसूत्री विनश्यति ॥५॥

भाषानुवाद—अवसर रहते हुए शीघ्रता पूर्वक अपना कर्त्तव्य निश्चित करके उसे पूरा करना चाहिये । (अवसर के प्रति) जागरूक न रहने वाला दीर्घसूत्री व्यक्ति समय निकल जाने पर विनष्ट हो जाता है ॥५९॥

भवेद्भाव्यं बलीयं चेत् महांश्च भ्रंशते जनः ।
अपाये मुह्यते बुद्धिर्न गर्वान्धत्वमाचरेत् ॥६०॥

भाषानुवाद—भावी (होनी) बहुत बलवान् होती है। चाहे कितना ही बड़ा व्यक्ति क्यों न हो (होनी से वशीभूत होकर) भ्रष्ट होता है। विनाशकाल में बुद्धि मोहित (नष्ट) हो जाती है अतः (किसी को भी) गर्वान्धता का आचरण नहीं करना चाहिये ॥६०॥

सदा सन्मार्गमाश्रित्य सुशान्त्याऽभीष्टमाप्नुयात् ।
आपदेत्युभलोकाभ्याम् दूषणी दुर्मतिश्रिते ॥६१॥

भाषानुवाद—सर्वदा अच्छे मार्ग का आश्रय लेकर सुन्दर शान्ति पूर्वक अपने अभीष्ट को प्राप्त करना चाहिये दुर्बुद्धि में स्थित व्यक्ति के ऊपर दोनों लोकों को दूषित करने वाली आपत्ति आती है ॥६१॥

खलो व्याजस्तुतेर्मुग्धंवञ्चयन् स्वार्थमश्नुते ।
ततो ज्ञात्वैव याथार्थ्यं सदा विश्वास आर्ज्यते ॥६२॥

भाषानुवाद—धूर्त (व्यक्ति) व्याजस्तुति (स्तुति के बहाने से निन्दा) के द्वारा मोहित हुए व्यक्ति को धोखा देकर अपना उल्लू सीधी करते हैं। इसलिये सदा वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त करके ही विश्वास अर्जित किया जाता है ॥६२॥

न कर्त्तव्याच्चलेत् किंचिन्निकाराद् भीतमानवः ।
स्थिरत्वं कर्मतो जाड्यं चरन् वै विन्दते मधु ॥६३॥

भाषानुवाद—तिरस्कार से भयभीत मनुष्य को कभी भी कर्त्तव्य से विचलित नहीं होना चाहिये। कर्म से स्थिरता या कर्त्तव्य से रुकना जड़ता है

कर्मपथ पर (निरन्तर) चलते रहने वाला व्यक्ति निश्चित मधु अर्थात् उत्तम फल को प्राप्त करता है ।।६३।।

साहसाद्दुर्गमे काले प्रभूताभूतिराप्यते ।
साहसान्मानसम्मानं साहसे श्रीः प्रकीर्तिता ।।६४।।

भाषानुवाद—साहस से कठिन समय में (भी) प्रचुर सम्पत्ति या ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है । साहस से (ही) मान सम्मान (प्राप्त) होता है (अतः) साहस में लक्ष्मी का निवास कहा गया है ।।६४।।

असाधुत्वात् स्वकीयाद्वै विपत्तिर्दीर्घतां व्रजेत् ।
प्रायशः साधुवृत्तस्य नैवापत्तिः स्थिरा भवेत् ।।६५।।

भाषानुवाद—अपनी असाधुता से विपत्ति बड़ी हो जाती है । साधुचरित्र व्यक्ति की आपत्ति प्रायः स्थिरता को नहीं प्राप्त करती है ।।६५।।

खले विश्वस्य वञ्च्यन्ते विदग्धाश्चाऽपि हीश्वरा ।
नाश्रेयसे भवेत्कस्य विश्वासो दुर्जने जने ।।६६।।

भाषानुवाद—धूर्तों का विश्वास करके विद्वान् तथा समर्थ लोग भी धोखा खा जाते हैं । दुर्जन व्यक्ति का विश्वास भला किसके लिए अकल्याणकारी नहीं होता ? ।।६६।।

भवेत्क्रोधस्तु दुर्गत्यै निवृत्यैवास्ति तोषणम् ।
दुर्जनस्याथ मूढ़स्य प्रसादोऽपि भयंकरः ।।६७।।

भाषानुवाद—दुर्जन और मूढ़ व्यक्ति का क्रोध तो दुर्गतिकारी होता ही है

उसकी प्रसन्नता भी भयंकर होती है। उनसे निवृत्त होने पर ही अर्थात् दूर रह कर ही संतोष प्राप्त हो सकता है ॥६७॥

न भेदं कारयेत् स्वीये सदा चैकत्वमाश्रयेत् ।
भवेद्भेदो विनाशाय संहतिः कार्यसाधिका ॥६८॥

भाषानुवाद—स्वजनों में फूटन नहीं डालनी चाहिये हमेशा एकता से रहना चाहिये। भेद (फूटन) विनाश का हेतु होता है (और) एकता कार्यासिद्धि-कारिणी होती है ॥६८॥

गुणानर्जेत् सदा यत्नैः गुरुत्वायैव ते सदा ।
न दौर्गुण्ये मतिं कुर्याद् विपत्यब्धावपि स्थिते ॥६९॥

भाषानुवाद—सर्वदा यत्न करके गुणों का संचय करना चाहिये क्योंकि वे हमेशा गौरवदायक ही होते हैं। विपत्ति के सागर में डूबे रहने पर भी (कभी) दुर्गणशीलता की इच्छा (बुद्धि) नहीं करनी चाहिये ॥६९॥

कासारः शुष्यति ग्रीष्मे वियुक्तो वर्षणेऽपि च ।
सज्जनः पापचर्यायाम् विपर्यासे च दुर्जनः ॥७०॥

भाषानुवाद—तालाब ग्रीमऋतु में सूखता है (स्वप्रिय से) वियोगी व्यक्ति वर्षा में भी (और अधिक) शुष्क अर्थात् परितप्त होता है। सज्जन पापचर्या में क्षुब्ध होता है (सूखता है) तथा उससे विपरीत अर्थात् पुण्याचार में दुर्जन व्यक्ति शोक प्राप्त करता है ॥७०॥

ज्ञातयः सम्भवन्त्येव प्रभावे, वैभवे, सुखे ।
विपत्तौ यान्ति मित्रत्वं न ते लभ्याः क्वचिन्नराः ॥७१॥

भाषानुवाद—प्रभावकाल में (उन्नति के समय या प्रभुता के समय में) समृद्धि में तथा सुख में तो बन्धुओं का बनना सम्भव ही है अर्थात् सभी नाता निभाते हैं। किन्तु विपत्तिकाल में मित्रता रखने वाले मनुष्य कहीं नहीं प्राप्त होते ॥७१॥

स्खलनं पर्वतारोहे पतनं नैव कथ्यते ।
ततः संरोध संभीत्या न लक्ष्यं क्वापि वर्जयेत् ॥७२॥

भाषानुवाद—पर्वतारोहण के समय में स्खलन पतन नहीं कहलाते हैं। अतः विघ्नों के भय से अपने लक्ष्य को कभी भी नहीं छोड़ना चाहिये ॥७२॥

उग्रादुद्विजते लोको लोके लोकभयंकरात् ।
तस्मान् मित्रत्वलाभाय नोग्रत्वं क्वापि संश्रयेत् ॥७३॥

भाषानुवाद—लोक के लिए भयंकर उग्र व्यक्ति से संसार उद्वेग को प्राप्त होता है। अतः मित्रत्व लाभ प्राप्त करने (इच्छा रखने वाले) के लिये कभी भी उग्रता का समाश्रयण नहीं करना चाहिये ॥७३॥

कर्मणैव स्वकीयेन भाग्यलेखा विधीयते ।
अपेक्ष्यत्येव दैवम् हि पौरुषं चार्थसाधकम् ॥७४॥

भाषानुवाद—अपना भाग्य अपने ही कर्मों से बनता है। दैव भी अर्थ सिद्धि कराने वाले पुरुषार्थ की ही अपेक्षा रखता है ॥७४॥

वरं मृत्युस्तिरस्कारान्न चास्निग्धेष्वहो वसेत् ।
भवेद् भूतिः प्रभूता चेत् परित्याज्यैव सा त्वलम् ॥७५॥

भाषानुवाद—तिरस्कार (सहने) से मृत्यु श्रेष्ठ है (अतः) स्नेह न करने वालों के मध्य निवास नहीं करना चाहिये। (वहाँ) चाहे कितनी ही प्रचुर सम्पत्ति क्यों न हो उसे छोड़ ही देना चाहिये ॥७५॥

पितुर्माता शताधिक्या गुरुत्वे शास्त्रकीर्तिता ।
कथनायैव मन्तव्यं न चाचाराय दृश्यते ॥७६॥

भाषानुवाद—शास्त्रों में पिता की अपेक्षा गौरव में माता को सौगुना अधिक कहा गया है। पर यह बात केवल कहने के लिये ही माननी चाहिये आचरण में तो इससे विपरीत ही दिखाई देता है ॥७६॥

अतीव सरलं लोकं लोको नित्यं प्रबाधते ।
ग्रस्यते नैव वक्रत्वे हिमांशुश्चापि राहुणा ॥७७॥

भाषानुवाद—अत्यन्त सरल व्यक्ति को संसार सदा सताता है। वक्र होने पर चन्द्रमा को भी राहु नहीं ग्रसता है ॥७७॥

चतुराश्रम चर्यायाः गृहस्थं मूलमिष्यते ।
गृहस्थस्यापि या मूलं सा नारी किं न पूज्यते ॥७८॥

भाषानुवाद—चारो आश्रमों ( ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास आश्रम) का मूल गृहस्थाश्रम ही होता है। गृहस्थाश्रम का भी जो मूल है (अतः सबसे महान् है) उस नारी की पूजा क्यों नहीं की जाती है ॥७८॥

धृतिः शीलं क्षमा शक्तिः भवेन्नारी सुपेशला ।
नृणां चारित्र्यमूलं सा धरित्रीवास्ति धारिणी ॥७९॥

भाषानुवाद—सुकोमला नारी धैर्य, शील, क्षमा एवं शक्ति स्वरूपिणी होती है। नरों के चरित्र का मूल भी वही है तथा पृथ्वी के समान (उन सबको) धारण करने वाली है ॥७९॥

याचना यातना तुल्या विशाले विश्वसंयुगे ।
न भिक्षोस्तेजसो गाथा याचनान्तं हि गौरवम् ॥८०॥

भाषानुवाद—(इस) विशाल विश्वरूपीयुद्धक्षेत्र में याचना यातना के समान है। भिक्षुक की तेज की कथा नहीं होती याचना से निश्चय ही गौरव का अन्त हो जाता है ॥८०॥

स्वाश्रयः सुखमूलं च कष्टो दीर्घपराश्रयः ।
निकारायैव तन्नित्यं ततस्त्याज्यस्स सर्वदा ॥८१॥

भाषानुवाद—स्वाश्रित होना सुख का कारण है और दीर्घकाल तक दूसरे पर आश्रित रहना कष्टदायक है क्योंकि उससे तिरस्कार ही सदा प्राप्त होता है अतः वह (पराश्रय) सर्वदा त्यागने योग्य है ॥८१॥

प्राप्तिसंभावनामात्रान्निश्चिन्तो न भवेत् क्वचित् ।
मेघदर्शनमात्रेण स्फोर्यते न स्वकं घटम् ॥८२॥

भाषानुवाद—(कसी वस्तु की) प्राप्ति की संभावना मात्र से कभी भी निश्चिन्त होकर नहीं बैठ जाना चाहिये। मेघों के दर्शनमात्र से अर्थात् वर्षा की सम्भावना मात्र से अपना घड़ा नहीं फोड़ दिया जाता है ॥८२॥

भोगार्थिनः कुतोऽहिंसा नाहिंसार्थी तु भोगवान् ।
परं शुद्धिरसंभाव्या प्राणिनां प्राणिभोजनम् ॥८३॥

भषानुवाद—भोगार्थी को अहिंसा कहाँ ? (और) अहिंसेच्छु को भोग की प्राप्ति नहीं होती । ( इस संसार में रह कर ) परम शुद्धि अर्थात् सर्वथा हिंसाशून्यता असंभव है, क्योंकि प्राणियों का प्राणी ही भोजन होता है ॥८३॥

नोद्वेगमाप्नुयाद्धीमान् लोके दुष्टजनोक्तिभिः ।
दोषदर्शी भवेद् धूर्तः साधुष्वपि तपस्विषु ॥८४॥

भाषानुवाद—संसार में बुद्धिमान् व्यक्ति को दुष्टों की उक्तियों से उद्विग्न नहीं होना चाहिये । क्योंकि धूर्त व्यक्ति तो साधुओं व तपस्वियों में भी दोष देखने वाला ही होता है ॥८४॥

विग्रहो नैव कर्त्तव्य उत्कृष्टेन कथंचन ।
आपत्तयः समायान्ति विपर्यासे चरन्ति ये ॥८५॥

भाषानुवाद—अपने से बड़े व्यक्तियों के साथ कभी झगड़ा मोल नहीं लेना चाहिये । इसके विपरीत मार्ग पर चलने वालों अर्थात् बड़ों से झगड़ने वालों को आपत्तियाँ घेर लेती हैं ॥८५

गर्जन्तो नैव वर्षन्ति मेघाः ख्यातिरियं चिरात् ।
सत्फलेन न कष्ठेन द्योत्यते साधुसाधुता ॥८६॥

भाषानुवाद—गरजने वाले मेघ बरसते नहीं यह प्रसिद्धि दीर्घकाल से है । सज्जन व्यक्ति अपनी सज्जनता को सत्फलों द्वारा व्यक्त करते हैं अपने मुख से अर्थात् कथन से नहीं ॥८६॥

संयुगे तु परीक्ष्येत शूरता शौर्यमानिनाम् ।
गेहे सिंहत्वमाप्नोति यथा श्वा दुर्जनस्तथा ॥८७॥

भाषानुवाद—शूरता का अभिमान रखने वालों की शूरता की परीक्षा तो युद्ध क्षेत्र में ही होती है । घर में तो जैसे कुत्ता ( भी ) सिंहत्व प्राप्त कर लेता है वैसे ही दुर्बल व्यक्ति भी ॥८७॥

न स्त्रियम् चावजानीत चिराद्घोषस्तु घोष्यते ।
छलायैवेति मन्तव्यं न चेद् दौर्गत्यमन्यथा ॥८८॥

स्त्री का अपमान नहीं चाहिये यह घोषणा तो दीर्घकाल से की जाती है किन्तु (वह) छलने के लिए ही मानी जानी चाहिये । यदि ऐसा न होता तो (स्त्रियों की) दुर्गति (जो प्रायः देखने में आतीहै वह) नहीं होती ॥८८॥

धनानां गतयस्तिस्रो दानं भोगो विनाशता ।
ददात्येनन्न भुंक्ते च विनष्टे सोऽवसीदति ॥८९॥

भाषानुवाद—धनों की तीन गतियाँ होती हैं, दान, भोग तथा विनाश । जो व्यक्ति न दान देता है, न उपभोग करता है वह व्यर्थ धन के नष्ट हो जाने पर अथवा स्वयं नष्ट होने पर ( मृत्यु के समय ) अत्यन्त व्यथित होता है ॥८९॥

कामना निर्धनानां च दरिद्राणाममर्षता ।
सादनायैव सर्वत्र ततो त्याज्यैव तैः सदा ॥९०॥

भाषानुवाद—निर्धनों की कामना (महत्वाकांक्षा) तथा दरिद्रों का क्रोध सर्वदा (उनके लिए) घातक होते हैं अतः उनके द्वारा (निर्धन द्वारा महत्वाकांक्षा तथा दरिद्र से द्वारा क्रोध) वे सदा त्याग देने योग्य हैं ॥९०॥

निरारम्भो गृहस्थश्च परिव्राट् संग्रहे रतः ।
शिरःशूलाय द्वावेतौ भवेताम् लोकसंस्थितेः ॥९१॥

भाषानुवाद—निष्क्रिय गृहस्थ तथा संग्रह में लगा हुआ संन्यासी ये दोनों ही ससार की स्थिति अर्थात् व्यवस्था के लिये सिरदर्द होते हैं ॥९१॥

देवान् पितॄन् मनुष्याँश्चातिथीन् वा भिक्षुकानपि ।
पूजयन् कीर्तिमाप्नोति भूयसीं मनुजः सदा ॥९२॥

भषानुवाद—देवताओं, पितरों, मनुष्यों अतिथियों तथा भिखारियों की भी पूजा करने वाला मनुष्य सर्वदा प्रचुर यश प्राप्त करता है ॥९२॥

यस्यैव यद् भवेत् कार्यं तत्तस्यैव हि शोभते ।
प्रतीपे याति हास्यत्वं विचार्यैवाचरेत् ततः ॥९३॥

भाषानुवाद—जिसका जो कार्य होता है, उसको ही वह शोभा देता है । इसके विपरीत अर्थात् दूसरों का कार्य करने से हँसी होती है अतः (उस विषय में) सोच-समझ कर आचरण करना चाहिये ॥९३॥

व्याकोशते न मोहस्य कलिले मोक्षपंकजम् ।
भोगक्षये भवेन्नालं संन्यासः सपरिग्रहः ॥९४॥

भाषानुवाद—मोह के कीचड़ में मुक्ति रूपी कमल नहीं खिला करता है । परिग्रह सहित सन्यास मात्र भोगों को क्षीण करने के लिए पर्याप्त नहीं होता है अथवा सन्यास ग्रहण कर लेने मात्र से भोग नहीं क्षीण हो जाते ॥ ९४॥

न धूर्तं बोधयेद् धीमानसंगत्यैव शं सुखम् ।
पंकक्षालनतो दूरादस्पर्शः श्रेयसे सदा ॥९५॥

भाषानुवाद—बुद्धिमान् व्यक्ति को धूर्तों को नहीं समझाना चाहिये। (धूर्तों की) संगति न करने में शान्ति, सुख होता है। कीचड़ की धोने के बजाय सर्वदा दूर से उसका स्पर्श ही न करना कल्याणकारो है ॥९५॥

गुरूणां सेवया तेषां विद्यां प्राप्नोति सेवकाः ।
खनित्रेण खनन् तोयं यथाविन्देन्नरः श्रमी ॥९६॥

भाषानुवाद—गुरुओं की सेवा से उनकी विद्या को सेवकजन (शिष्य) प्राप्त कर लेते हैं। जिस प्रकार परिश्रमी व्यक्ति कुदाल से (पृथ्वी) खोद कर जल प्राप्त कर लेता है ॥९६॥

कौटिल्यं न भजेल्लोके स्नेहभ्रंशकरम् खरम् ।
ऋजुत्वं त्वाचरेन्नित्यं सदा स्नेहस्य वर्षकम् ॥९७॥

भाषानुवाद—संसार में स्नेह को तोड़ने वाली (तीक्ष्ण) कटु कुटिलता का आचरण (किसी को) नहीं करना चाहिये (और) स्नेहस्रोतभूत या स्नेह की वर्षा करने वाली सरलता सर्वदा (ही) आचरणीय है ॥९७॥

वृणुयान्मानितां लोकः श्रियं वा लोकलोकिनीम् ।
मानित्वं सश्रियत्वं च भभेल्लोके सुदुर्लभः ॥९८॥

भाषानुवाद—मनुष्य चाहे मान का वरण करले अथवा समस्त लोक (संसार) को देखने वाली या समस्त संसार के द्वारा सस्पृह देखी जाने वाला ( अर्थात् समस्त जागतिक व्यवहार की आधारभूता ) लक्ष्मी का वरण करे। लोक में संमान एवं लक्ष्मीवत्ता (दोनों एकत्र) दुर्लभ होती हैं ॥९८॥

वर्धमानं स्वतोनित्यं दृष्ट्वाधिक्ये सुतं सुखे ।
प्रमोदं पितरौ यातो विद्यायां च तथा गुरुः ॥९९॥

भाषानुवाद—अपने पुत्र को (संतान मात्र को) अपने से अधिक सुखी होता देख कर माता-पिता प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार गुरू अपने शिष्यों की विद्या में वृद्धि देखकर प्रसन्न होता है ॥९९॥

अशिवं चिन्तयेन्नैव कस्यचिन्नरपुंगवः ।
अकल्याणाय स्वस्यैव भवेच्चिन्ताशिवंकरी ॥१००॥

भाषानुवाद—श्रेष्ठ मनुष्य को कभी ( किसी के ) अकल्याण का चिन्तन नहीं करना चाहिये । किसी के भी अमंगल (अकल्याण) का चिन्तन स्वयं अपने ही लिये अमंगलकारी होता है ॥१००॥

---

## लेखिका की अन्य रचनाएँ ।

१. **पातञ्जल योगसूत्र का विवेचनात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन**
(स्वर्णपदक प्राप्त शोधग्रन्थ) ।

२. **संस्कृत वाङ्मय में यौगिक विभूतियों का स्वरूप साधन एवं लक्ष्य**
(अप्रकाशित शोधपरक ग्रन्थ) ।

३. **तर्कभाषासमीक्षणम्** (संस्कृत में अप्रकाशित) ।

४. **योगभाष्यालोक**—एम० ए० उत्तरार्ध (संस्कृत) के दर्शन के पाठ्यक्रम में निर्धारित पातञ्जल योगदर्शन पर (संस्कृत) व्यासभाष्य; उसकी सरल हिन्दी 'आलोक' टीका व सूत्र एवं भाष्यगत प्रत्येक गूढ़ विषय पर छात्रोपयोगी विशद टिप्पणियों में अलंकृत (अप्रकाशित) ।

५. **भावाञ्जलि** :—(भावपूर्ण संस्कृत स्तोत्रों का संकलन तथा उनकी व्याख्या) ।

६. **स्वरूपलहरी** ।

७. **नीरवगान**—(हिन्दी मुक्तकों, गीतों एवं कविताओं का सरस संकलन) ।

८. **प्रथम रश्मि**—प्रारम्भिक हिन्दी - गीत - संग्रह (अप्रकाशित) ।

९. **यौगिक विभूतियों का स्वरूप-निरूपण एवं पुराण साहित्य में उनका निदर्शन एक अध्ययन** – (अप्रकाशित शोधग्रन्थ) ।

प्रकाशक : **श्री शक्तियोगाश्रम नानाराव घाट, कानपुर**
मुद्रक : अमलतास प्रेस, परेड, कानपुर